10

न्याय दर्शन

प्रस्तावना

दृशिर् प्रेक्षणे धातु के पर भाव ल्युट् प्रत्यय होने पर दर्शन शब्द निष्पन्न होता है। और वह दर्शन शब्द यद्यपि अनेक स्थानों पर चाक्षुष प्रत्यक्ष ज्ञान का वाचक है तथापि इन प्रसंगों में तत्व ज्ञान का वाचक है। और भी, 'दृश्यते अनेन ज्ञायते' करण में ल्युट्-प्रत्यय के योग में निष्पन्न दर्शन शब्द न्याय आदि विद्या का वाचक है। गौण वृत्ति द्वारा वह विद्या प्रतिपादक ग्रन्थ का वाचक है। भारतीय प्राचीन दर्शन वैसे दो प्रकार का है- आस्तिक और नास्तिक। आस्तिक दर्शन वे जो वेद को प्रमाण रूप में गिनते हैं। वे नास्तिक हैं जो वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं। नास्तिक दर्शन प्रधान रूप से तीन हैं- चार्वाक, बौद्ध और जैन। उनमें कर्म और ज्ञान दोनों काण्ड के ही प्रामाण्य के निराकरण से चार्वाक चरम नास्तिक हैं। बौद्ध और जैन मुख्यत: कर्मकाण्ड का ही प्रामाण्य निराकृत करते हैं। वहाँ पर वे चार्वाक के समान चरम नास्तिक नहीं हैं। आस्तिकों में छ: प्रधान होते हैं- न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त और मीमांसा। सभी दर्शनशास्त्रों का मूल उद्देश्य मोक्ष ही है। उसके कारण दर्शन शास्त्र को मोक्ष शास्त्र के रूप में कहा जाता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- न्याय दर्शन का माहात्म्य जान पाने में;
- न्याय शब्द का अर्थ जान पाने में;
- न्याय शास्त्र का बीज जान पाने में;

टिप्पणी

- काल के भेद से न्याय शास्त्र का विभाग कर पाने में;
- न्याय शास्त्र के आचार्यों के बारे में जान पाने में;
- न्याय शास्त्र के विषय में जान पाने में;
- न्याय मत में प्रमाण तत्व जान पाने में;
- न्याय मत में प्रमेय तत्व जान पाने में;
- हेत्वाभास परिचय प्राप्त कर पाने में;
- न्याय मत में मोक्ष जान पाने में;
- असत्कार्यवाद को जान पाने में।

10.1 न्याय दर्शन का माहात्म्य

आस्तिक सम्प्रदाय में न्याय दर्शन अन्यतम है। और यह कहीं तर्कशास्त्र अथवा आन्वीक्षिकी नाम से अभिहित है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस शास्त्र के महत्व को उल्लिखित कर अत्यधिक प्रशंसा की गई है। जैसे-

प्रदीपः सर्वविद्यानाम् उपाय सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वर्धाणां शश्वदान्वीक्षिकी मता॥

वस्तुतः न्यायशास्त्र की जो युक्ति पद्धति है वह विशेष रूप से सभी व्याकरण अलंकार आदि दर्शन सम्प्रदायों के द्वारा स्वीकृत है। उस युक्ति से ही वेद आदि विद्याओं का ग्रहण दृढ़ होता है। अतः वह न्याय शास्त्र शाश्वत् है, ऐसा चिन्तन करते हैं। और साहित्य में न्यायशास्त्र के प्रभाव का एकमात्र उदाहरण नैषधचरित्र में है। उसमें श्रीहर्ष द्वारा न्याय शास्त्र के अनुसार मन अणु परिमाण का कहा गया है। उसमें अणु परिमाण के द्वारा लोगों के चित्त के साथ धूलिकणों की उपमा प्रदान की गई है। और श्लोक है-

अजस्रभूभीतटकुट्टनोद्गतैरूपास्य चरणेषु रेणुभिः।
रयमकर्षाध्ययनार्थमागतैर्जनस्य चेतोभिरिवाणिमाङ्कितैः॥

10.2 न्याय शब्द का अर्थ

इसके द्वारा ले जाया जाता है, प्राप्त किया जाता है विवक्षित अर्थ की सिद्धि को, ऐसा नी धातु के करण में धञ् प्रत्यय के योग में न्याय शब्द व्युत्पन्न होता है। भाष्यकार वात्सायन ने न्याय शब्द का अर्थ कहा- ''प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः''। यहाँ 'प्रमाणैः' पद द्वारा अनुमान के पाँच अवयव गृहीत हैं। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन

टिप्पणी

पाँच अवयव हैं। प्रत्यक्ष आदि प्रमाण इन अवयवों के मूल हैं। इसीलिए वात्सायन द्वारा भाष्य में कहा गया है-

''तेषु प्रमाणसमवायः। आगमः प्रतिज्ञा। हेतुः अनुमानम्। उदाहरणं प्रत्यक्षम्। उपनयनं उपमानम् इति।'' और अर्थ पद से अनुमेय पदार्थ ग्राह्य है। अतः प्रमाणों के द्वारा पञ्च अवयवों से अर्थ अथवा अनुमेय पदार्थ का परीक्षण या परीक्षा न्याय है। उससे परोक्षतया अनुमान प्रमाण ही न्याय शब्द का फलित अर्थ होता है।

पूर्व में कहा गया है की न्यायशास्त्र आन्वीक्षिकी पद द्वारा कहा जाता है। अनु-'पश्चात्', ईक्षा-'ज्ञान', इस प्रकार अनुमानपरम् अन्वीक्षा पद है। अतः भाष्यकार वात्सायन ने कहा-

''प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्य अन्वीक्षणम् अन्वीक्षा।
तया प्रवर्तते इति आन्वीक्षिकी न्यायविद्या न्यायशास्त्रम्॥''

यहाँ यह आक्षेप हो सकता है कि न्याय शब्द का अर्थ अनुमान होता है तो बौद्ध शास्त्रों में भी न्याय शास्त्र होगा, क्योंकि उन शास्त्रों में भी अनुमान स्वीकार किया जाता है। वस्तुतः न्याय शास्त्र में अनुमान प्रमाण द्वारा दृढ़ता द्वारा वेद के प्रमाण्य को प्रतिष्ठापित किया जाता है। इसीलिए न्यायमञ्जरी में कहा कि-

''न्यायविस्तरस्तु मूलस्तम्भभूतः सर्वविद्यानां वेदप्रमाण्यहेतुत्वात्।''

10.3 न्याय शास्त्र का बीज

न्यायशास्त्र का बीज वैदिक साहित्य में निहित है। छान्दोग्योपनिषद् में नारद के वचन में न्यायशास्त्र का उल्लेख दिखता है। इसीलिए कहा गया है-

''ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदम् आथर्वणं चतुर्थम् इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यम्....'' (छा. उप. 7.1.2)

यहाँ वाकोवाक्य शब्द का अर्थ आचार्य शंकर ने कहा- वाकोवाक्य तर्कशास्त्र है। अतः न्यायविद्या का उद्भव कब हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यथा माल्यकार उद्यान में प्रस्फटित पुष्पों के एक-एक कर चुनकर एकत्र करके पुष्प माला को बनाता है, वैसे ही महर्षि गौतम ने न्याय विद्या के सिद्धान्तों को सर्वतः संग्रह करके न्यायसूत्र को रचा।

10.4 काल भेद से न्याय शास्त्र का विभाग

काल-भेद से न्यायशास्त्र तीन प्रकार का है- प्राचीन, मध्य और नव्य। आचार्य गौतम के काल से प्रारम्भ होकर उदयनाचार्य के कालपर्यन्त प्राचीन न्याय, भा-सर्वज्ञ के काल से प्रारम्भ होकर गगेशोपाध्याय से पूर्व के समय में मध्य न्याय और गगेशोपाध्याय के काल से परवर्ती नव्य न्याय का काल है, ऐसी स्थिति है।

टिप्पणी

10.5 प्राचीन-मध्य-नव्य न्याय के वैशिष्ट्य

प्राचीन न्याय में प्रमेयों का प्राधान्य होता है। भाषा सरल और सुबोध है। यहाँ विषय के प्रतिपादन का कौशल स्थूल है। प्राचीन न्याय का प्रधान प्रतिपक्ष बौद्ध सम्प्रदाय है। नव्य न्याय में प्रमाणों का प्राधान्य दिखता है। वैसे ही नव्य न्याय के प्रामाणिक ग्रन्थ तत्वचिन्तामणि में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द चार खण्ड होते हैं। यहाँ प्रकारता, विशेष्यता, प्रतियोगिता, अनुयोगिता, अवच्छेदकता इत्यादि पारिभाषिक पदों के प्रयोग के बाहुल्य से भाषा का काठिन्य होता है। यहाँ विषय प्रतिपादन कौशल सूक्ष्म है। भा-सर्वज्ञ कृत न्यायसार को अवलम्बित करके मध्य न्याय का आरम्भ होता है। मध्य न्याय में वैशेषिक सिद्धान्त न्याय शास्त्र के परिपूरक सिद्धान्त के रूप में गृहीत नहीं है। मध्य न्याय का मुख्य प्रतिपक्ष बौद्ध सम्प्रदाय और जैन सम्प्रदाय हैं।

10.6 न्याय सम्प्रदाय के आचार्य

कालक्रम से न्याय शास्त्र के आचार्यों के नाम तथा उनके द्वारा प्रणीत सन्दर्भों के नाम दिये जा रहे हैं-

अनुक्रम	ग्रन्थकार	ग्रन्थ	कालः (ईशवीयशतकम्)
1.	गौतम/अक्षपाद	1. न्यायसूत्र	200 (ईसा पूर्व)
2.	वात्सायन	2. न्यायसूत्र पर न्यायभाष्य	400 (ईसा पूर्व)
3.	उद्योतकर	3. न्यायवार्तिक 4. न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका	600 (ईसा पूर्व)
4.	वाचस्पति मिश्र	5. न्यायसूचीनिबन्ध 6. न्याय सूत्रोद्धार 7. तत्वबिन्दु	9 (ईस्वी)
5.	जयन्त भट्ट	8. न्याय मञ्जरी 9. न्यायवार्तिकतात्पर्य परिशुद्धि	9 (ईस्वी)
6.	उदयनाचार्य	10. न्यायकुसुमाञ्जलि 11. न्यायपरिशिष्ट 12. आत्मतत्वविवेक	10
7.	भासर्वज्ञ	13. न्याय सार 14. न्याय भूषण	900 (ईस्वी)

टिप्पणी

8.	वरदराज	15. बोधिनी (कुसुमाञ्जलि टीका) 16. तार्किक रक्षा	12
9.	दिवाकर उपाध्याय	17. परिमल (कुसुमाञ्जलि टीका) 18. न्यायनिबन्धनोद्यत (परिशुद्धि टीका)	13
10.	शशधर आचार्य	19. न्यास सिद्धान्तदीप	13
11.	मणिकण्ठ मिश्र	20. न्यायरत्न 21. न्यायचिन्तमणि	14
12.	गंगेश उपाध्याय	22. तत्वचिन्तामणि	13वीं शताब्दी
13.	वर्धमानोपाध्याय	23. न्यायनिबन्धप्रकाश 24. मणि प्रकाश 25. कुसुमाञ्जलि प्रकाश	14
14.	शंकरमिश्र	26. वादिविनोद 27. भेदप्रकाश 28. मणिमयूख	14
15.	यज्ञपति उपाध्याय	29. मणिप्रभा	15
16.	वासुदेव सार्वभौम	30. अनुमान परीक्षा 31. प्रत्यक्षमणि परीक्षा 32. शब्दमणि परीक्षा	16
17.	अन्नंभट्ट	33. तर्कसंग्रह	16
18.	जगदीश तर्कालंकार	34. मयुख (चिन्तामणि टीका) 35. न्यायादर्श 36. तर्कामृत	16
19.	रघुनाथ शिरोमणि	37. तत्वचिन्तामणि दीधिति	16
20.	विश्वनाथ न्यायपञ्चानन	38. न्यायसूत्रवृत्ति 39. भाषापरिच्छेद	17

पाठगत प्रश्न 10.1

1. दर्शन शब्द का क्या अर्थ है?

टिप्पणी

2. नास्तिक दर्शन सम्प्रदाय कौन हैं?
3. न्यायशास्त्र का अन्य नाम क्या है?
4. भाष्यकार द्वारा न्याय शब्द का किस प्रकार का अर्थ किया गया है?
5. अनुमान के पाँच अवयव क्या हैं?
6. न्यायशास्त्र में किस प्रमाण द्वारा वेद का प्रामाण्य द्वारा उपस्थापित है?
7. छान्दोग्योपनिषद् में आम्नात 'वाकोवाक्य' पद का अर्थ क्या है?
8. न्याय सूत्र के प्रणेता कौन हैं?
9. नव्य न्याय के प्रवक्ता कौन हैं?
10. एक मध्य न्याय के आचार्य का नाम लिखिए।
11. प्राचीन-न्याय का भेद क्या है?
12. न्याय सूत्र का उद्भव काल कब हुआ था?
13. न्यायवार्तिक किसके द्वारा प्रणीत है?
14. न्याय वार्तिक तात्पर्य किसके द्वारा रचित है?
15. उदयनाचार्य कृत न्यायशास्त्र के ग्रन्थ का नाम क्या है?
16. न्याय मञ्जरीकार कौन हैं?
17. नव्य न्याय का प्रामाणिक ग्रन्थ क्या है?
18. वर्धमानोपाध्याय कृत टीका का नाम क्या है?
19. वादिविनोद किसके द्वारा प्रणीत है?
20. न्यायसूत्रवृत्तिकार कौन हैं?
21. रघुनाथ शिरोमणि कृत न्याय ग्रन्थ का नाम क्या है?
22. न्यायसार किसके द्वारा प्रणीत है?

10.7 न्यायशास्त्र के विषय

न्यायशास्त्र में सोलह पदार्थ हैं और जिनका ज्ञान मोक्ष-लाभ के लिए अनुकूल है। और वे पदार्थ हैं- प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रह स्थान। इन पदार्थों के तत्व ज्ञान से मोक्ष का लाभ होता है। तथा सूत्र है-

टिप्पणी

''प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जप्ल-वितण्डा-हेत्वाभास-छल-जपति-निग्रह स्थानानां तत्वज्ञानान्नि श्रेयसाधिगम्।'' इन पदार्थों को छोड़कर वाच्यता, अवच्छेदकता इत्यादि अनन्त पदार्थ न्याय में प्रतिपादित और व्यवहृत है। अतः स्वीकार किये जाते हैं। अतः नैयायिक अनियत पदार्थवादी हैं।

10.8 प्रमाण तत्व

प्रमाण ही प्रमेय की सिद्धि होता है। यथार्थानुभव का साधन प्रमाण है। न्याय मत में प्रमाण चार प्रकार का है- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। तथा न्यायसूत्र - 'प्रत्यक्षानुनोपमानशब्दाः प्रमाणानि'। इन प्रमाणों द्वारा यथाक्रम प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शब्द ये चार प्रमा उत्पन्न होते हैं। प्रमा यथार्थ अनुभव अथवा ज्ञान है।

10.9 प्रत्यक्ष

इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से उत्पन्न (जन्य) ज्ञान प्रत्यक्ष है। ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है? आत्मा मन से संयोग करता है, मन इन्द्रिय द्वारा संयोग करता है, और इन्द्रिय अर्थ द्वारा संसृष्ट होता है। वहाँ पर व्यक्ति के अर्थ का ज्ञान उत्पन्न होता है। एक इन्द्रिय द्वारा एक से अधिक विषय युगपद् में जाने जा सकते हैं। परन्तु एक से अधिक इन्द्रिय से युगपत् ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है। इन्द्रियाँ पाँच हैं- चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक्। मन भी इन्द्रिय ही है। अर्थ घट आदि विषय हैं। सन्निकर्ष संयोग आदि सम्बन्ध हैं। छः इन्द्रियों द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह यथा- चक्षु द्वारा जन्य ज्ञान चाक्षुष है। श्रोत्र द्वारा जन्य ज्ञान श्रावण है। घ्राण द्वारा उत्पन्न ज्ञान घ्राणज है। रसना द्वारा उत्पन्न ज्ञान रासन है। त्वचा जन्य ज्ञान त्वाच है। मन से जन्य ज्ञान मानस कहा जाता है।

इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है। और वह प्रत्यक्ष द्विविध है - निर्विकल्पक और सविकल्पक। निष्प्रकारक ज्ञान निर्विकल्पक प्रत्यक्ष है, सप्रकारक ज्ञान सविकल्पक प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष ज्ञान का करण प्रत्यक्ष प्रमाण है। और वह इन्द्रिय ही है।

10.9.1 सन्निकर्ष

इन्द्रिय का विषय के साथ विशिष्ट सम्बन्ध होता है वही ज्ञान उत्पन्न होता है। वहाँ जो सम्बन्ध ज्ञान का कारण होता है, वह सम्बन्ध ही सन्निकर्ष कहलाता है। विषय अर्थ कहलाता है। इन्द्रिय का अर्थ के साथ वह संसर्ग, सम्बन्ध, जिसके कारण आत्मा में ज्ञान उत्पन्न होता है, वह सम्बन्ध ही सन्निकर्ष कहलाता है। अर्थ अनेक हैं। उनके द्वारा इन्द्रियों के विभिन्न सम्बन्ध होते हैं। अतः विविध सन्निकर्ष हैं। इन्द्रिय के साथ अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष कहा जाता है। उदाहरण- चक्षु से ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है। इसलिए-आत्म मन से संसृष्ट होता है, मन चक्षु से संसृष्ट होता है,

और चक्षु घट आदि द्रव्य से संयुक्त होता है। चक्षु तैजस है। वह विषयदेश को जाता है। चक्षु भी द्रव्य है। घट आदि भी द्रव्य है। अतः दोनों द्रव्यों का संयोग होता है। इसी संयोग से घट विषयक चाक्षुष ज्ञान उत्पन्न होता है। यह सन्निकर्ष जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष कहा जाता है। वहाँ यह संयोग ही सन्निकर्ष कहलाता है। इस प्रकार इन्द्रियभेद और विषयभेद से सन्निकर्ष भेद होता है।

और वह सन्निकर्ष लौकिक और अलौकिक भेद से दो प्रकार का है। लौकिक सन्निकर्ष छः हैं – संयोग, संयुक्त समवाय, संयुक्त समवेत-समवाय, समवाय, समवेत समवाय और विशेष्य विशेषण भाव। अलौकिक सन्निकर्ष सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण और योगज के भेद से तीन प्रकार का है।

1. **संयोग** – चक्षु द्वारा घट प्रत्यक्ष में संयोग सन्निकर्ष है।

2. **संयुक्त समवाय** – चक्षु द्वारा घटरूप के प्रत्यक्ष में संयुक्त समवाय सन्निकर्ष है, चक्षुः संयुक्त घट में रूप के समवाय के कारण।

3. **संयुक्त समवेत समवाय** – रूपत्व जाति के प्रत्यक्ष में संयुक्त समवेत समवाय सन्निकर्ष है। चक्षु संयुक्त घट में रूप समवेत, और वहाँ रूप में रूपत्व जाति का समवाय होने से।

4. **समवाय** – श्रोत्र से शब्द प्रत्यक्ष में समवाय सन्निकर्ष। कर्ण विवरवर्ती आकाश के, श्रोत्रत्व के कारक। शब्द आकाश का गुण है। गुण-गुणी का सम्बन्ध समवाय है।

5. **समवेत समवाय** – और शब्दत्व प्रत्यक्ष में समवेत समवाय सन्निकर्ष, श्रोत्र समवेत शब्द में शब्दत्व का समवाय होने के कारण।

6. **विशेष्यविशेषणभाव** – चक्षु से अभाव प्रत्यक्ष में विशेष्यविशेषणभाव सन्निकर्ष है, घटाभाव के समान भूतल, यहाँ चक्षु संयुक्त भूतल में घटाभाव का विशेषण होने से।

10.9.2 कारण

कार्य से नियत पूर्ववर्ती कारण है। और कार्य प्राग्भाव प्रतियोगी है। अर्थात् जो कार्य से पूर्व नियम द्वारा होता है, वह कारण कहा जाता है। और वह कारण अनन्यथासिद्ध होता है। रासभ (गधा) आदि तो घट कार्य के प्रति अन्यथासिद्ध हैं। कारण त्रिविध है – समवायि, असमवायि और निमित्त।

1. **समवायिकारण** – 'जो समवेत होकर कार्य को उत्पन्न करता है, वह समवायी कारण है।' अर्थात् समवाय सम्बन्ध से जिस द्रव्य में कार्य उत्पन्न होता है, वह द्रव्य उत्पन्न कार्य का समवायि कारण होता है। यथा तन्तु पट का और पट अपने

रूप आदि का समवायिकारण है। कार्य समवाय द्वारा जहाँ होता है वही समवायि कारण है, ऐसा संक्षेप में ग्राह्य है।

2. **असमवायिकारण** - असमवायिकारण की दो प्रत्यासत्ति है। कार्य अथवा कारण के साथ एक अर्थ में समवेत होने पर जो कारण है, वह असमवायिकारण है।

   काग्रैकार्थप्रत्यासत्ति- कार्य के साथ एक अधिकरण में समवाय सम्बन्ध से होता है और भी कार्य के प्रति जो कारण होता है, वह असमवायिकारण है। यथा दो कपालों के संयोग से घट उत्पन्न होता है। अत: घट के प्रति कपाल संयोग कारण है। और घट कार्य है। 'कपाल संयोग' घटात्मक कार्य अधिकरण कपाल में समवाय सम्बन्ध से होता है और घटात्मक कार्य के प्रति कारण भी होता है। कपाल-संयोग कैसे घट के प्रति कारण भी होता है तो कहते हैं कपाल-संयोग के अभाव में घटोत्पत्ति नहीं होती है। एवं 'तत्वसत्वे तत्सत्ता, तदभाव तदभावे' इस अन्वय-व्यतिरेक के द्वारा कपाल का कारणत्व ज्ञेय है। अत: कपाल संयोग घट के प्रति असमवायिकारण होता है। वैसे ही पट के प्रति तन्तु संयोग असमवायिकारण होता है।

   कारर्णकार्थप्रत्यासत्ति- स्वकार्य समवायिकारण के साथ एक अधिकरण में समवाय सम्बन्ध से होता है और कार्य के प्रति जो कारण होता है वह असमवायिकारण होता है। यथा घट रूपात्मक कार्य का समवायिकारण घट है और वह समवाय से कपाल में होता है। और कपाल में समवाय सम्बन्ध से कपालरूप होता है। किसी घटरूपात्मक कार्य के प्रति 'कपालरूप' कार्य होता है। अत: घट रूप के प्रति कपालरूप असमवायिकारण होता है। वैसे ही पटरूप के प्रति तन्तुरूप असमवायिकारण होता है।

3. **निमित्तकारण** - समवायी और असमवायीकारण से भिन्न कारण निमित्त करण होता है। यथा पट का निमित्तकारण 'तुरी', वेमा आदि हैं।

तीन कारणों में कार्य का जो असाधारण कारण है, वह करण है। असाधारणत्व वैसे फलायोग व्यवच्छिन्नत्व है। वह उक्त है- 'फलायोगव्यवच्छिन्नं कारणम्'। यथा वृक्ष छेदन कार्य में कुठार वृक्ष-संयोग विशेष करण है। नव्य मत में तो जो व्यापार विशिष्ट सत् कार्य को उत्पन्न करता है वह कारण करण है। उक्त है- 'व्यापारवत् असाधारण कारणं करणम्'। तथा वृक्षच्छेदन होने पर कुठार पर करण होता है। और उसके द्वारा घट प्रत्यक्ष में पहले पक्ष में चक्षु द्वारा घट का संयोग प्रत्यक्ष प्रमाण है, और द्वितीय पक्ष में चक्षु इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण होता है।

10.10 अनुमान

अनुमिति का करण अनुमान है। अर्थात् अनुमिति का जो करण है वह अनुमान प्रमाण है। अनुमिति नाम परामर्श से जन्य ज्ञान है। उक्त है- ''परामर्शजन्यं ज्ञानम् अनुमिति:'।

टिप्पणी

व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मता का ज्ञान परामर्श है। ''यत्र यत्र धूमः (हेतुः) तत्र तत्र वह्नि (साध्यः)'', इसमें वह्नि साहचर्य धूम में है। यह नियत साहचर्य निमय ही व्याप्ति है। वस्तुतः हेतु साध्य का साहचर्यनियम व्याप्ति है। जो साधा जाता है या अनुमान किया जाता है, वह साध्य (अग्नि) है। साध्य का साधन हेतु (धूम) है। सन्दिग्ध साध्यवान् पक्ष (पर्वत आदि) है। हेतु का पक्षवृत्तित्व (पर्वतादि वृत्तित्व) पक्षधर्मता है। जिस व्यक्ति को व्याप्ति ज्ञान है, वह कभी पर्वत के समीप गया और पर्वत पर धूम को (धूमवान् पर्वत) देखकर व्याप्ति का स्मरण करता है ''यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र अग्निः''। वहाँ पर उसका ज्ञान होता है- वह्नि से व्याप्त धूम इस पर्वत पर (वह्नि व्याप्य धूमवान! पर्वतः)। यह परामर्श ज्ञान है। उस परामर्श ज्ञान से 'पर्वत वह्निमान है', यह अनुमिति उत्पन्न होती है। उस अनुमिति का करण प्राचीन मत में (फलायोग-व्यवच्छिन्नं कारणं करणम्) परामर्श तथा नव्य मत में (व्यापारवत् असाधारणं कारणं करणम्) व्याप्ति स्मृति है। अतः प्राचीनमत में परामर्श ज्ञान अनुमान प्रमाण है और नवीनमत में व्याप्ति स्मृति अनुमान प्रमाण है। अनुमान जिस क्रम से होता है, वह क्रम यहाँ नीचे प्रदर्शित है-

1. साहचर्यग्रह - जहाँ जहाँ हेतु, वहाँ वहाँ साध्य
   जहाँ जहाँ धूम वहाँ वहाँ अग्नि।
2. व्याप्ति का अनुभव - साध्यव्याप्य हेतु। वह्नि व्याप्य धूम।
3. पक्षधर्मता ज्ञान - हेतुमान पक्ष। धूमवान् पर्वत।
4. व्याप्ति-स्मरण - साध्यव्याप्य हेतु। वह्नि व्याप्य धूम।
5. परामर्श - साध्यव्याप्य हेतुमान् पक्ष। वह्नि व्याप्य धूमवान्-पर्वत।
6. अनुमिति - पक्ष साध्यवान्। पर्वत वह्निमान्।

अनुमान दो प्रकार का है- स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। जहाँ स्वयं के लिए अनुमान प्रवृत्त होता है, वह स्वार्थानुमान है। उसी प्रकार जब पर्वत पर धूम को देखकर, वहाँ अग्नि है अथवा नहीं, ऐसा संशय होता है। तब जहाँ जहाँ धूम है, वहाँ वहाँ अग्नि है, इस व्याप्ति को स्मरण करके वह्नि से व्याप्य धूमवान् यह पर्वत है, ऐसा परामर्श होता है। उसके कारण 'पर्वत वह्निमान है', यह अनुमिति उत्पन्न होती हे। यही स्वार्थानुमान है। और भी जब स्वयं धूम से अग्नि का अनुमान करके अन्य को बोध कराने के लिए पञ्चावयव वाक्य प्रयुक्त होते हैं, वह परार्थानुमान होता है।

इसीलिए परार्थानुमान के पाँच अवयव हैं-

1) प्रतिज्ञा - पर्वत वह्निमान है। (अनिर्णीत)

2) हेतु - धूम के कारण।

3) उदाहरण - जहाँ धूम है, वहाँ अग्नि है, यथा रसोईघर।

टिप्पणी

4) उपनय – और यह वैसा है। (वह्नि व्याप्य धूमवान् यह पर्वत है।) (परामर्श)

5) निगमन – इसीलिए वैसा है (वह्नि व्याप्य धूमत्व होने के कारण पर्वत वह्निमान है) (निर्णीत)

और पुनः अनुमान त्रिविध है- पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट है। जहाँ कारण से कार्य का अनुमान होता है, वहाँ पूर्ववत् अनुमान है। यथा मेघ के होने पर वर्षा होगी। जहाँ कार्य के कारण का अनुमान होता है, वहाँ शेषवत् अनुमान है। यथा नदी के पूर्णत्व आदि को देखकर वर्षा हुई होगी, इस स्रोत का अनुमान करते है। सामान्यतोदृष्ट अनुमान है। यथा गतिक्रिया प्रयुक्त अन्य दृष्ट का अन्यत्र दर्शन। और सूर्य का है। अतः सूर्य गतिमान है।

10.11 उपमान

उपमिति का करण उपमान प्रमाण है। उपमिति संज्ञा-संज्ञी के सम्बन्ध का ज्ञान है। संज्ञा के साथ संज्ञी का सम्बन्ध ज्ञान उपमिति है। जैसे कोई भी गवय शब्द द्वारा क्या अर्थ है, यह नहीं जानता है, उसके द्वारा किसी भी वनेचर से सुना गया 'गो सदृश गवय है'। वहाँ से वह वन को गया, गो (गाय) सदृश पिण्ड को देखा और 'गो सदृश्य गवय है', इस वाक्यार्थ का स्मरण करता है। और उससे यह 'गवय शब्द वाचक' ज्ञान उत्पन्न होता है। वह ज्ञान की उपमिति है। यहाँ गवय संज्ञा, गो सदृश पिण्ड संज्ञी है। अतः यह पिण्ड 'गवय शब्द वाच्य', यह ज्ञान उपमिति है। प्राचीन मत में अतिदेश वाक्यार्थ स्मरण उपमान प्रमाण है, नवीन मत में सादृश्य ज्ञान उपमान प्रमाण है, और अतिदेश वाक्यार्थ-स्मरण व्यापार है।

10.12 शब्द

आप्त वाक्य शब्द है। जो यथार्थ कहता है, वह यथार्थवक्ता ही आप्त है। वही भ्रम आदि दोष से शून्य है। उसका जो वाक्य है, वह शब्द है, वही प्रमाण है। पदसमूह वाक्य है। शक्ति विशिष्ट वर्णात्मक शब्द पद है। पद का उस अर्थ के साथ सम्बन्ध ही शक्ति है, उस पदश्रवण में अर्थस्मृति उत्पन्न होती है। इसीलिए तर्कसंग्रह में उक्त है- ''अस्मात् पदार्थ अयम् अर्थो बौद्धव्य इति ईश्वरसंकेतः शक्तिः''। मनुष्य इस शक्ति को कैसे जाता है। शक्तिग्रह वृद्ध व्यवहार से होता है। और उत्तमवृद्ध का ''अश्व लाओ'', ''गो को बाँधो'', ये वाक्य सुनकर मध्यम वृद्ध वैसा ही करता है। यह सब बालक देखता है। उससे आवापन और उद्वापन द्वारा गो पद की गाय में तथा अश्व पद की अश्व में शक्ति है, ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है। शब्द बोध में आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति,

ये तीन कारण हैं। तात्पर्य भी है। शाब्द बोध का कारण प्राचीनतम में पदार्थज्ञान (स्मरणात्मक) और नवीनतम में पदज्ञान (स्मरणात्मक) है। भाषा परिच्छेद में कहा गया है- 'पदज्ञानन्तु करणं द्वारं तत्र पदार्थधी:'। प्राचीन न्याय में पदार्थ ज्ञान (स्मरणात्मक) शब्द प्रमाण है, और नवीन न्याय में पदज्ञान (स्मरणात्मक) ज्ञेय है। शब्दप्रमाण दो प्रकार का है- दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ। लौकिक विषय में दृष्टार्थ और अलौकिक विषय में अदृष्टार्थ है।

पाठागत प्रश्न 10.2

1. न्याय शास्त्र में मोक्षनुकूल कितने पदार्थ हैं?
2. अनियत पदार्थवादी कौन हैं?
3. न्याय मत में प्रमाण कितने हैं?
4. प्रत्यक्ष का लक्षण क्या है?
5. प्रत्यक्ष कितने हैं?
6. सन्निकर्ष कितने हैं?
7. लौकिक सन्निकर्ष क्या है?
8. अलौकिक सन्निकर्ष क्या है?
9. घटरूप प्रत्यक्ष में किस प्रकार का सन्निकर्ष होता है?
10. शब्द प्रत्यक्ष में किस प्रकार का सन्निकर्ष होता है?
11. अभाव प्रत्यक्ष में किस प्रकार का सन्निकर्ष होता है?
12. कारण का क्या लक्षण है?
13. कारण कितने प्रकार का है?
14. पट का समवायि कारण क्या है?
15. पट कार्य का निमित्त कारण क्या है?
16. करण क्या है?
17. नव्य न्याय के मत में प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है?
18. प्राचीन मत में करण का लक्षण क्या है?
19. नव्य मत में करण का लक्षण क्या है?
20. अनुमिति क्या है?

टिप्पणी

21. परामर्श क्या है?
22. प्राचीन मत में अनुमान प्रमाण क्या है?
23. नव्य मत में अनुमान प्रमाण क्या है?
24. अनुमान कितने हैं?
25. पूर्ववत् अनुमान का एक उदाहरण दीजिए।
26. उपमिति क्या है?
27. प्राचीन मत में उपमान प्रमाण क्या है?
28. शब्द प्रमाण क्या है?
29. शब्द प्रमाण कितने हैं?
30. शक्ति क्या है?
31. शक्तिग्रह कैसे होता है?
32. शब्द बोध में तीन कारण क्या हैं?
33. नव्य मत में शब्द प्रमाण क्या है?
34. शाब्द बोध में व्यापार क्या है?

10.13 प्रमेय तत्व

न्याय शास्त्र में प्रमेय बारह हैं- आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दु:ख और अपवर्ग।

1. **आत्मा** - आत्मा सभी का द्रष्टा, सभी का भोक्ता, सर्वज्ञ और सर्वानुभवी है। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दु:ख और ज्ञान आत्मा के गुण हैं। और सूत्र है- इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दु:ख-ज्ञानानि आत्मनो लिङ्गम्।
2. **शरीर** - शरीर आत्मा का भोगायतन है। और वह इन्द्रियार्थों का आश्रय है।
3. **इन्द्रियाँ** - भोग के साधन पञ्चभूत जन्य घ्राण आदि पाँच इन्द्रियाँ हैं।
4. **अर्थ** - 'गन्धरसरूपस्पर्शशब्दा: पृथिव्यादिगुणा: तदर्था:। भोग योग्य विषय अर्थ हैं। रूप आदि।
5. **बुद्धि** - बुद्धि उपलब्ध ज्ञान है। 'बुद्धिरूपलब्धिर्ज्ञानमिति अनर्थान्तरम्'।
6. **मन** - मन अन्त:करण अतीन्द्रिय है। युगपत् ज्ञान की अनुत्पत्ति मन का अनुमापक है।

7. **प्रवृत्ति** – 'प्रवृत्तिवाग्-बुद्धि-शरीराम्भ:'। प्रवृत्ति वाचिक, मानसिक और शारीरिक कर्म है।

8. **दोष** – 'प्रवर्तनालक्षणा दोषा:'। राग, द्वेष, मोह प्रवृत्ति के कारण दोष है।

9. **प्रेत्यभाव** – 'पुनरूत्पत्ति प्रेत्यभाव:'। मृत्यु के बाद पुनर्जन्म प्रेत्यभाव है।

10. **फल** – प्रवृत्ति दोष से उत्पन्न अर्थ फल है। वह सुख और दु:ख का अनुभव, भोग है।

11. **दु:ख** – 'बाधनालक्षणं दु:खम्'। पीड़ा का लक्षण दु:ख है। दु:खानुपपन दु:ख है।

12. **अपवर्ग** – 'तदत्यन्तविमोक्ष: अपवर्ग:'। दु:ख से उत्पन्न आत्यन्तिक विमुक्ति अपवर्ग है।

यहाँ उक्त बारह प्रमेयों के अतिरिक्त संशय आदि जो जो पदार्थ हैं, उनका भी अर्न्तभाव प्रमेय पदार्थ में होता है। मोक्ष प्राप्ति में आत्मा आदि तत्वों के ज्ञान का साक्षात् उपयोग होता है। अत: उनका प्रमेयसूत्र में पृथक् उल्लेख किया गया है।

10.14 संशय

एक धर्मी में विरूद्ध प्रकारक ज्ञान संशय है। यथा आत्मा नित्य है अथवा अनित्य है। यहाँ आत्मा एक धर्मी है। उनमें नित्यत्व और अनित्यत्व विरूद्ध धर्मी के हैं। वे आत्मा में गृहीत है उनका ज्ञान संशय है।

10.15 प्रयोजन

'येन प्रयुक्त: प्रवर्तते तत् प्रयोजनम्'। अर्थात् जिस अर्थ को आश्रित करके प्रवृत्त अथवा निवृत्त होता है, वह प्रयोजन है।

10.16 दृष्टान्त

''लौकिकपरीक्षणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्त:''। जिस अर्थ में लौकिकों तथा परीक्षकों का बुद्धि साम्य होता है, वह दृष्टान्त है। और वह दृष्टान्त प्रत्यक्ष विषय अर्थ है।

10.17 सिद्धान्त

'तन्त्राधिकरणभ्युपगमसंस्थिति: सिद्धान्त:'। शास्त्रों में प्रमाणों के द्वारा पदार्थो को स्वीकार करना सिद्धान्त है। यह स्वक्रियमाण पदार्थ है अथवा नहीं। और वह चार प्रकार का है – सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगम।

टिप्पणी

10.18 अवयव

'प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि अवयवा:। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन, पाँच अवयव हैं। और ये अनुमान वाक्य हैं।

10.19 तर्क

'अविज्ञाततत्वे अर्थे कारणोपपत्तित: तत्वज्ञानार्थम् ऊह: तर्क:। ऊह ज्ञान विशेष है। कारणोपपत्तित ऊह, यह तर्क का लक्षण है। अविज्ञात तत्व रूप अर्थ में तत्व ज्ञानार्थ है, ऐसा प्रयोजन कथन है। कारण पद प्रमाणार्थ है। और उपपत्ति पद सम्भव है। अत: सामान्यत: जिस ज्ञात पदार्थ के तत्व को नहीं माना जाता है, उस पदार्थ में तत्व ज्ञान के लिए प्रमाण सम्भव प्रयुक्त ज्ञान विशेष तर्क है। और वह तर्क न प्रमाण के अन्तर्गत है न प्रमाणान्तर है। वह तो प्रमाणों का अनुग्राहक होकर तत्व ज्ञान के लिए कल्पित है। इसीलिए ''किमिदं जन्म कृतकहेतुकम उत अकृतकहेतुकम् अथवा आकस्मिकहेतुकम्'', इस विज्ञात तत्व के अर्थ में कारण की उत्पत्ति द्वारा ऊह प्रवृत्त होता है। यदि कृतक हेतु जन्म है, तो हेतुच्छेद से उपपन्न जन्मोच्छेद है। अब अकृतक हेतु द्वारा हेतूच्छेद के अशक्यत्व से अनुपपन्न यह जन्मोच्छेद है। आकस्मिक, अकस्माद उत्पन्न पुन: नष्ट नहीं होता, निवृत्ति कारण के अभाव से। एक तर्क विषय में कर्म निमित्त जन्म है, ऐसा प्रर्वतमान प्रमाण तर्क द्वारा अनुगृहीत हैं। और तर्क व्याप्ति ग्राहक है। इसीलिए धूम यदि वह्नि व्यभिचारी हो तो वह्नि जन्य नहीं होगा, इस प्रकार धूम-वह्नि का व्याप्ति निश्चय होता है। उससे प्रमाण आदि तत्व ज्ञन सोपयोगी होता है। अत: प्रमाण के अनुग्राहक होने से तर्क का भी उसमें परक्ष्येण उपयोग है, ऐसा बोधित है। और वह तर्क पाँच प्रकार का है- आत्माश्रय, इतरेतराश्रय, चक्रकाश्रय, अनवस्था और अनिष्ट प्रसन्न।

10.21 वाद

वाद, जल, वितण्डा सम्पूर्ण रूप में कथा पद से कहे जाते हैं। पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष के प्रतिपादक न्यायानुगत वाक्य सन्दर्भ कथा है। उसमें तत्व बुभुत्सु की कथा वाद हैं। जो जानने की इच्छा करता है, बुभुत्सु है। तत्व को जानने की इच्छा करने वाला तत्व बुभुत्सु है। उनकी कथा वाद है। उस वाद में प्रमाणों और तर्क द्वारा स्वपक्ष की स्थापना और परपक्ष का उपालम्भ होता है। तत्व के निर्णय के लिए पक्ष-प्रतिपक्ष पञ्चावयव युक्त वाद करते हैं। जैसे गुरू-शिष्य में तत्वालोचन वाद।

10.22 जल्प

विजिगीषु कथा जल्प है। जो जीतने की इच्छा करता है, वह विजिगीषु है। जहाँ कथा

टिप्पणी

में पक्ष-प्रतिपक्ष जीतने के लिए अथवा तत्व ज्ञान के लिए छल, जाति, निग्रह स्थान द्वारा प्रवर्तित होता है, वहाँ जल्प होता है।

10.23 वितण्डा

'सएव प्रतिपक्ष स्वपक्षज्ञस्थापनहीनो वितण्डा वितण्डा'। जहाँ कथा में प्रतिपक्ष पक्ष के मत को खण्डित करता है, किन्तु स्वमत को स्थापित नहीं करता है, वह कथा वितण्डा होती है।

10.24 हेत्वाभास

जिस हेतु में व्याप्ति है और हेतु पक्ष में है, वह सद् हेतु होता है। सद्हेतु है तो अनुमिति होती है। सद्हेतु न हो तो अनुमिति नहीं होती है। जो हेतु सद्हेतु नहीं है, वह असद्हेतु कहा जाता है। वही हेत्वाभास भी कहलाता है।

अनुमिति के करण से अन्यतर प्रतिबन्धक, यथार्थ ज्ञान का विषयत्व हेत्वाभास का लक्षण है। हेत्वाभास की दो प्रकार से व्युत्पत्ति होती है- 'हेतुवत्-आभासन्ते इति हेत्वाभासा:', दृष्टा: हेतव:। अथवा हेतो: आभासा: इति हेत्वाभासा:, हेतुदोषा:। हेत्वाभास विषयक यथार्थ ज्ञान अनुमान की साक्षात् परम्परा के द्वारा प्रतिबन्ध होता है। जहाँ हेत्वाभास होते हैं, वहाँ अनुमिति उत्पन्न नहीं होती। हेत्वाभास (दुष्ट हेतु) पाँच हैं -

सव्यभिचार-विरूद्ध-सत्प्रतिपक्ष-असिद्ध और बाधित के भेद से। सव्यभिचार पुन: साधारण, असाधारण, अनुपसंहारी के भेद से तीन है। असिद्ध हेत्वाभास भी तीन है- आश्रयसिद्ध, स्वरूपसिद्ध और व्याप्यत्वसिद्ध। हेत्वाभास (हेतु दोष) पाँच हैं- व्यभिचार, विरोध, सत्प्रतिपक्ष, असिद्ध, बाध के भेद से। जिसका व्यभिचार दोष है, वह सव्यभिचार है। जिसका विरोध दोष है, वह निरूद्ध है। जिसका सत्प्रतिपक्ष दोष है, वह सत्प्रतिपक्ष है। जिसका असिद्धि दोष है, वह असिद्ध है। जिसका बाध दोष है, वह बाधित है।

10.24.1 सव्यभिचार

व्यभिचार के साथ वर्तमान सव्यभिचार है। व्यभिचार एकतरफ पक्ष में नियम का अभाव है। हेतु की साध्यधर्म में अनियत अवस्थिति होती है।

1. **साधाारण** - साध्य के अभाववत् वृत्ति साधारण है। जहाँ साध्याभाव के आश्रय में हेतु रहता है, वह साधारण है। यथा पर्वत वह्निमान है, प्रमेयत्व के कारण।

2. **असाधारण** - सर्वपक्ष-विपक्ष से व्यावृत्त पक्ष मात्र वृत्ति असाधारण है। निश्चित साध्यवान् पक्ष है। निश्चित साध्य अभाव वान पक्ष है। जहाँ केवल पक्ष में हेतु रहता है, अन्यत्र सपक्ष आदि में नहीं, वह असाधारण है। यथा शब्द नित्य है, शब्दत्व के कारण।

टिप्पणी

3. **अनुपसंहारी** – अन्वय-व्यतिरेक दृष्टान्त रहित अनुपसंहारी है। जहाँ अन्वय दृष्टान्त और व्यातिरेक दृष्टान्त नहीं है, वहाँ अनुपसंहारी है। यथा सर्व नित्य है, प्रमेयत्व के कारण। यहाँ सभी के पक्षत्व के कारण दृष्टान्त नहीं है।

10.24.2 विरूद्ध

साध्य के अभाव से व्याप्त हेतु विरूद्ध है। साध्य के अभाव के साथ व्याप्त हेतु विरूद्ध है। यथा-शब्द नित्य है, कृतकत्व के कारण।

10.24.3 सत्प्रतिपक्ष (प्रकरणसम)

जिसका साध्याभावसाधक हेतु के अतिरिक्त विद्यमान होता है, सत्प्रतिपक्ष है। यथा शब्द नित्य है, श्रवणत्व के कारण। शब्द अनित्य है, कार्य होने के कारण, घट के समान।

10.24.4 असिद्ध (साध्यसम)

असिद्धत्व से युक्त साध्यपदार्थ साध्यतुल्य, साध्यसम अथवा असिद्ध कहलाता है।

1. **आश्रयसिद्ध** – जहाँ पक्ष का आश्रय सिद्ध नहीं है, आश्रय अप्रसिद्ध यथा गगनारविन्द (आकाश कुसुम) की सुरभि, अरविन्दत्व के कारण, सरोज अरविन्द के समान।
2. **स्वरूपासिद्ध** – जहाँ पक्ष में हेतु स्वरूपतः कभी नहीं रहता है। यथा-शब्द गुण है, चाक्षुष होने के कारण।
3. **व्याप्यतासिद्ध** – सोपधिक हेतु व्याप्यता सिद्ध है। जहाँ उपाधियुक्त हेतु रहता है, वह व्याप्यतासिद्ध है। 'साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वम् उपाधिः'। जो साध्य का व्यापक है किन्तु हेतु का अव्यापक है, वह उपाधि है। यथा पर्वत धूमवान है, वह्निमत्व के कारण। यहाँ आद्र ईंधन संयोग उपाधि है।

10.24.5 बाधित (कालातीत)

जिस साध्य का अभाव प्रमाणान्तर से निश्चित है, वह बाधित है। जिस साध्य का अभाव अन्य प्रमाण द्वारा निश्चित है, वह बाधित हेत्वाभास है। यथा-वह्नि अनुष्ण है, द्रव्यत्व के कारण।

10.25 छल

'वचनविद्यातोऽर्थविकल्पोपच्या छलम्'। अभिमत अर्थ के विरूद्ध अर्थ का ग्रहण करके

वादियों के वचन का विद्यात छल है। और वह तीन है - वाक्छल, सामान्य छल और उपचार छल। यथा नवकम्बलवान यह माणवक (बालक) नवकम्बल अभिप्राय में नौ कम्बल, इसका अर्थ लेकर असम्भव द्वारा प्रतिषेध करता है- इसका एक कम्बल है, नौ कम्बल कहाँ, यह वाक्छल है।

10.26 जाति

असत् उत्तर जाति है। न्यायसूत्र में - ''साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जाति:''। साधर्म्य और वैधर्म्य के द्वारा हेतु का प्रतिषेध जाति होती है। वादी के द्वारा स्वपक्ष के साधन के लिए हेतु प्रयोग में प्रतिवादी के प्रतिषेध हेतु जाति हैं। और वे जातियाँ साधर्म्यसमादि चौबीस (24) प्रकार के हैं। वैसे ही 'क्रियावान् आत्मौ', द्रव्य के क्रियाहेतुगुणयोग के कारण। द्रव्य क्रियाहेतुगुण युक्त क्रियावान् है, यथा, आत्मा, उससे क्रियावान है। एवं साधर्म्य के द्वारा अवतिष्ठित होता है - निष्क्रिय आत्मा है, विभुद्रव्य होने के कारण, आकाश के समान, यह साधर्म्यसम जाति है।

10.27 निग्रहस्थान

निग्रहस्थान पराजय का हेतु है। 'विप्रतिपत्तिरप्रत्तिपतिश्च निग्रहस्थानम्' - न्यायसूत्र में कहा गया है। विपरीत अथवा कुत्सित प्रतिपत्ति का ज्ञान विप्रतिपत्ति है। आरम्भ का विषय में और अनाम्भ अप्रतिपत्ति है। जहाँ अन्य के द्वारा स्थापित पक्ष का प्रतिषेध नहीं होता है, अथवा दोष उद्धृत नहीं होता है, वहाँ अप्रतिपत्ति होती है। विप्रतिपत्ति और अप्रतिपत्ति निग्रह स्थान के भेद नहीं अपितु निग्रह स्थानों के अनुमापक तथा सामान्य लक्षण हैं। प्रतिज्ञा हानि और प्रतिज्ञान्तर आदि 22 निग्रहस्थानों में छः अप्रतिपत्तिमूलक निग्रह स्थान तथा अन्य सोलह (16) विप्रतिपत्तिमूलक निग्रहस्थान हैं।

10.28 मोक्ष

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरूषार्थ चतुष्ट्य है। वहाँ मोक्ष परम पुरूषार्थ है। वह मोक्ष ही नि:श्रेयस, मुक्ति, अपवर्ग, निर्वाण इत्यादि पदों के द्वारा जाना जाता है। न्यायदर्शन की प्रवृत्ति मोक्ष प्राप्ति के लिए ही है। अत: न्याय दर्शन के आदिसूत्र में उक्त प्रमाण आदि पदार्थों के तत्वज्ञान से नि:श्रेयस की प्राप्ति होती है। और वह नि:श्रेयस बारह प्रमेयों में अन्यतम है। दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति मोक्ष है। न्याय सूत्र में मोक्ष का स्वरूप उक्त है- ''तदत्यन्तविमोक्षेऽपवर्ग:''। उस पद द्वारा यहाँ दु:ख अवगन्तव्य है। अत: सभी दु:खों का अत्यन्त विमोक्ष निवृत्ति है। वह अपवर्ग है। द्वितीय सूत्र में मोक्ष प्राप्ति का क्रम निर्दिष्ट है- ''दु:ख-जन्म-प्रवृत्ति-दोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदन्तरापायाद् अपवर्ग:''। जन्म अथवा पुनरूत्पत्ति दु:खों का कारण है। अत: पुनर्जन्म के विनाश पर

टिप्पणी

सभी दु:खों की आत्यन्तिक निवृत्ति सम्भव है। जन्म का कारण वैसी प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति के द्वारा शुभाशुभ कर्म-फल उत्पन्न होते हैं। उनके भोग के पुनर्जन्म होता है। और प्रवृत्ति राग-द्वेष मोह आदि दोषों के द्वारा उत्पत्ति उत्पन्न है। और दोष देह आदि में आत्माभिमान रूप मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होते हैं। अत: मिथ्याज्ञान के नाश में यथाक्रम जन्मरोध में दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति हो। इसीलिए न्यायमञ्जरीकार-

यावदात्मगुणा: सर्वे नोच्छिन्न वासनादय:।
तावदात्यन्तिकी दु:खनिवृत्तिर्नावकल्पयते॥

धर्माधर्मनिमित्तो हि सम्भव: सुखदु:खयो।
मूलभूतौ च तावेव स्तम्भौ संसारसद्मन:॥

तदुच्छेदे ते तत्कार्यशरीरानुपलम्भनात्।
नात्मन: सुखदु:खेस्त इत्यासौ मुक्त उच्यते॥ (न्यायमञ्जरी)

10.29 असत्कार्यवाद

नैयायिक असत्कार्यवादी हैं। उनके मत में उत्पत्ति के पूर्व कार्य है, वह उपादान कारण में असत् है। घटकार्य उत्पत्ति के पूर्व घटकारण मृत्तिका में कभी भी नहीं रहता है। कार्य कारण से भिन्न ही है। असत्कार्यवाद के अनुसार सत् कारण से असत कार्य की उत्पत्ति होती है। कार्य की उत्पत्ति के पूर्व होने पर उपादान कारण में असत् कार्य की जो उत्पत्ति है, वह 'आरम्भ' कहलाता है। जगत का उपादान कारण परमाणु समूह सत् अर्थात् नित्य है। परमाणु से द्वयणुक आदि की उत्पत्ति होती है। द्वयणुक आदि कार्य उत्पत्ति के पूर्व नहीं है। और अन्य विनाश से नहीं होता है। अत: न्याय मत में सत कारण से ही असत् कारण उत्पन्न होता है। यही असत्कार्यवाद आरम्भवाद का मूल है। महर्षि गौतम ने भी कहा। क्योंकि कार्य की उत्पत्ति-विनाश प्रत्यक्ष सिद्ध है, अत: कार्य असत् ही है। और न्यायसूत्र में है - ''उत्पादव्ययदर्शनात्''।

पाठगत प्रश्न 10.3

1. न्यायमत में प्रमेय कितने हैं?
2. न्यायमत में आत्मगुण क्या हैं?
3. शरीर क्या है?
4. अर्थ क्या हैं?
5. मन का अनुमापक क्या है?

टिप्पणी

6. दोष क्या है?
7. प्रेत्यभाव क्या है?
8. अपवर्ग क्या है?
9. संशय क्या है?
10. सिद्धान्त कितने हैं?
11. तर्क क्या है?
12. प्रमाणों का फल क्या है?
13. निर्णय लक्षण क्या है?
14. वाद क्या है?
15. जल्प क्या है?
16. किस कथा में स्वपक्ष स्थापना नहीं रहती है?
17. छल आदि का प्रयोग किस कथा में होता है?
18. हेत्वाभास क्या है?
19. हेत्वाभास कितने प्रकार का है?
20. सव्यभिचार हेत्वाभास कितने प्रकार का है?
21. ''गगनारविन्द सुरभि, अरविन्दत्व के कारण'', यहाँ कौन-सा हेत्वाभास विद्यमान है?
22. ''वह्नि अनुष्ण है, द्रव्यत्व के कारण'' यहाँ कौन-सा हेत्वाभास विद्यमान है?
23. छल कितने प्रकार के हैं?
24. जाति क्या है?
25. निग्रहस्थान क्या है?
26. निग्रस्थान कितने प्रकार के हैं?
27. विप्रतिपत्तिमूलक निग्रहस्थान कितने हैं?
28. न्यायमत में मोक्ष का स्वरूप क्या है?
29. 'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः', यहाँ उस पद का अर्थ क्या है?
30. न्यायमत में निःश्रेयस की प्राप्ति कैसे होती है?
31. दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति कैसे हो?

टिप्पणी

32. असत्कार्यवादी कौन हैं?

33. असत्कार्यवाद का सार क्या है?

34. आरम्भवादी कौन हैं?

पाठसार

गौतम प्रणीत न्यायसूत्र न्यायदर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस दर्शन में प्रमाण आदि सोलह (16) पदार्थ स्वीकृत हैं। इन पदार्थों के तत्वज्ञान से नि:श्रेयस की प्राप्ति होती है। न्यायमत में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द के भेद से चार प्रमाण हैं। प्राचीन, नव्य, मध्य के भेद से न्याय सम्प्रदाय त्रिविध है। गंगेश उपाध्याय नव्य न्याय के प्रवर्तक है। नैयायिक मत में 'सत: असत् उत्पद्यते', यह असत्कार्यवादी हैं। दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति मोक्ष है। और वह मोक्ष का लाभ मिथ्या ज्ञान आदि के नाश में पुर्नजन्म अवरोध से सम्भव होता है।

पाठान्त प्रश्न

1. न्याय दर्शन की महिमा का वर्णन कीजिए।
2. न्याय शब्द के अर्थ का वर्णन कीजिए।
3. न्यायशास्त्र का बीज लिखिए।
4. कालभेद से न्यायशास्त्र के भेदों को वर्णित कीजिए।
5. प्राचीन-मध्य-नव्य न्याय वैशिष्ट्य कौन से हैं?
6. न्याय मत में प्रत्यक्ष ज्ञान कैसे होता है?
7. न्यायमत में सन्निकर्षों को व्याख्यायित कीजिए।
8. कारणों का परिचय दीजिए।
9. न्याय मत में अनुमान कैसे उत्पन्न होते हैं?
10. न्याय मत में परार्थानुमान को विस्तृत कीजिए।
11. न्याय मत में उपमान को व्याख्यायित कीजिए।
12. न्याय मत में शब्द प्रमाण का वर्णन कीजिए।
13. न्याय के प्रमेयों का परिचय दीजिए।
14. सव्यभिचार हेत्वाभास सभेद एवं सोदाहरण व्याख्यात कीजिए।

15. साध्यसम हेत्वाभास का परिचय सभेद और सोदाहरण दीजिए।
16. छल स्पष्टीकृत कीजिए।
17. न्याय मत में प्रमेयों की जाति वर्णनीय हैं।
18. न्याय के अनुसार मोक्ष प्रतिपादन कीजिए।
19. न्याय के असत्कार्यवाद का उपपादन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-10.1

1. दर्शन शब्द का अर्थ तत्व ज्ञान है।
2. नास्तिक दर्शन सम्प्रदाय हैं - चार्वाक, बौद्ध और जैन।
3. न्यायशास्त्र का आन्वीक्षिकी अथवा तर्कशास्त्र अन्य नाम है।
4. भाष्यकार के द्वारा न्याय शब्द का अर्थ किया गया है - ''प्रमाणै: अर्थपरीक्षणं न्याय:''।
5. प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन-अनुमान के पञ्चावयव हैं।
6. न्यायशास्त्र में अनुमान प्रमाण द्वारा वेद का प्रमाण्य उपस्थित है।
7. छान्दोग्योपनिषद् में विहित 'वाकोवाक्य' पद का अर्थ तर्कशास्त्र है।
8. महर्षि गौतम न्यायसूत्र के प्रणेता हैं।
9. गन्नेशोपाध्याय नव्य न्याय के प्रवक्ता हैं।
10. भासर्वज्ञ मध्य न्याय के प्रवक्ता हैं।
11. प्राचीन न्याय में प्रमेयों का प्राधान्य दिखता है किन्तु नव्य-न्याय में प्रमाण प्रधान है।
12. ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी न्यायसूत्र का उद्भवकाल है।
13. न्यायवार्तिक उद्योतकर द्वारा प्रणीत है।
14. न्यायवार्तिक तात्पर्य वाचस्पत्ति मिश्र द्वारा विरचित है।
15. उदयानाचार्य कृत न्यायशास्त्र का ग्रन्थ न्यायनिबन्ध है।
16. न्याय मञ्जरीकार जयन्तभट्ट।
17. नव्य न्याय का प्रामाणिक ग्रन्थ गंगेशउपाध्याय कृत तत्वचिन्तामणि है।

18. बर्धमानोपाध्याय कृत प्रकाशटीका।
19. वादिविनोद शंकरमिश्र द्वारा प्रणीत है।
20. विश्वनापञ्चानन न्यायसूत्रवृत्तिकार है।
21. रघुनाथ शिरोमणि कृत न्यायग्रन्थ तत्वचिन्तामणि दीधिति है।
22. न्यायसार भासर्वज्ञ द्वारा प्रणीत है।

उत्तर-10.2

1. न्यायशास्त्र में मोक्षानुकूल सोलह पदार्थ प्रमाण आदि हैं।
2. नैयायिक अनियतपदार्थवादी हैं।
3. न्यायमत में चार प्रमाण हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।
4. 'इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है, प्रत्यक्ष का लक्षण है।
5. प्रत्यक्ष दो प्रकार का है- सविकल्प और निर्विकल्प।
6. सन्निकर्ष दो प्रकार का है- लौकिक और अलौकिक।
7. संयोग, संयुक्त समवाय, संयुक्त समवेत समवाय, समवाय, समवेत समवाय, विशेष्यविशेषणभाव, ये छः लौकिक सन्निकर्ष है।
8. सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण और योगज, ये तीन अलौकिक सन्निकर्ष हैं।
9. घटरूप प्रत्यक्ष में संयुक्त समवाय सन्निकर्ष होता है।
10. शब्दत्व प्रत्यक्ष में समवेत समवाय सन्निकर्ष होता है।
11. अभावप्रत्यक्ष में विशेष्यविशेषणभाव सन्निकर्ष है।
12. 'कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम्' यह कारण का लक्षण है।
13. कारण तीन हैं- समवायी, असमवायी और निमित्त।
14. तन्तु पट का समवायिकारण है।
15. तुरीय, वेमा आदि पट कार्य का निमित्त करण है।
16. असाधारण कारण करण है।
17. नव्य न्याय मत में चक्षु आदि इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण।
18. 'फलायोगव्यवच्छिन्नं कारणं करणम्' नव्य मत में करण लक्षण है।
19. 'व्यापारवत् कारणं करणम्' नव्य मत में करण का लक्षण है।

टिप्पणी

20. परामर्श जन्य ज्ञान अनुमिति है।
21. व्याप्ति विशिष्ट पक्षधर्मता ज्ञान परामर्श है।
22. प्राचीन मत में परामर्श ज्ञान अनुमान प्रमाण है।
23. नव्य मत में व्याप्ति स्मृति अनुमान प्रमाण है।
24. अनुमान दो प्रकार का है- स्वार्थानुमान और परार्थानुमान।
25. मेघों को देखकर वृष्टि होगी, वृष्टि का अनुमान है।
26. संज्ञा-संज्ञी सम्बन्ध का ज्ञान उपमिति है।
27. प्राचीन मत में अतदेश वाक्यार्थ स्मरण उपमान प्रमाण।
28. आप्त वाक्य शब्द प्रमाण है।
29. शब्द प्रमाण दो प्रकार का है। दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ।
30. 'अस्मात् पदात् अयम् अर्थः बोधव्यः', यह ईश्वर संकेत शक्ति है।
31. वृद्ध व्यवहार के द्वारा शक्तिग्रह होता है।
32. आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति, शाब्दबोध में तीन कारण है।
33. नव्य मत में शब्द प्रमाण पद ज्ञान हैं
34. पदार्थ स्मृति शब्द बोध में व्यापार है।

उत्तर-10.3

1. न्याय मत में प्रमेय बारह हैं।
2. न्याय मत में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान आत्मा के गुण हैं।
3. भोगायतन शरीर हैं।
4. भोग योग्य विषय अर्थ हैं।
5. युगपत् ज्ञान की मन से अनुत्पत्ति मन का अनुमापक है।
6. प्रवृत्ति कारण दोष हैं।
7. पुनः उत्पत्ति प्रेत्यभाव है।
8. दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति अपवर्ग है।
9. एक धर्मी में विरूद्ध प्रकार का ज्ञान संशय है। यथा आत्मा नित्य अथवा अनित्य है।

टिप्पणी

10. सिद्धान्त चार प्रकार का है- सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगम।
11. सामान्यतः जिस ज्ञात पदार्थ का तत्व अविज्ञात है, उस पदार्थ में तत्व ज्ञानार्थ में प्रमाणसम्भव प्रयुक्त ज्ञान विशेष तर्क है।
12. निर्णय अथवा तत्वज्ञान प्रमाणों का फल है।
13. 'विमृश्य पक्षप्रतिपक्षाभ्याम् अर्थावधारणं निर्णयः'।
14. तत्व बुभुत्सु की कथा वाद है।
15. विजिगीषु कथा जल्प है।
16. वितण्डा में स्वपक्ष स्थापना नहीं रहती हैं।
17. जल्प कथा में छल आदि का प्रयोग होता है।
18. हेतु का आभास अथवा दोष हेत्वाभास है। जो हेतुवत् आभास होते हैं, वे हेत्वाभास हैं।
19. हेत्वाभास पाँच प्रकार के हैं।
20. सव्यभिचार हेत्वाभास तीन प्रकार का है- साधारण, असाधारण और अनुपसंहारी।
21. गगनारविन्द की सुरभि, अरविन्द होने के कारण, यहाँ आश्रयसिद्ध हेत्वाभास विद्यमान है।
22. वह्नि (अग्नि) अनुष्ण है, द्रव्यत्व के कारण, यहाँ बाध हेत्वाभास है।
23. छल त्रिविध हैं- वाक् छल, सामान्य छल, और उपचार छल।
24. असत् उत्तर जाति है।
25. पराजय प्राप्ति हेतु निग्रह स्थान है।
26. बाईस (22) निग्रह स्थान हैं।
27. विप्रतिपत्तिमूलक सोलह (16) निग्रहस्थान हैं।
28. न्यायमत में दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति मोक्ष है।
29. 'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः' यहाँ तत् पद का अर्थ दुःख है।
30. न्यायमत में प्रमाण आदि के तत्व ज्ञान से निःश्रेयस प्राप्त होता है।
31. मिथ्या ज्ञान के नाश में दोष नाश होता है, दोष नाश में प्रवृत्तिनाश, प्रवृत्तिनाश में जन्मनाश, और जन्म नाश में दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है।
32. नैयायिक असत्कार्यवादी हैं।
33. सत् कारण से असत् कार्य उत्पन्न होता है, उत्पत्ति के पूर्व कार्य उपादान कारण में असत् है, यह असत्कार्यवाद का तात्पर्य है।
34. नैयायिक आरम्भवादी है।

।।दशम पाठ समाप्त।।